Chapter पच्चीस

प्रकृति के तीन गुण तथा उनसे परे

इस अध्याय में मन में उठने वाले तीन गुणों (सतो, रजो तथा तमो) के विविध कार्यात्मक स्वरूपों का वर्णन हुआ है जिनसे भगवान् के दिव्य स्वभाव की स्थापना होती है।

मन का संयम, इन्द्रियों का संयम, सहिष्णुता आदि शुद्ध सतोगुण की अभिव्यक्तियाँ हैं। इच्छा, प्रयास, मिथ्या गर्व आदि अमिश्रित रजोगुण की अभिव्यक्तियाँ हैं। तथा क्रोध, लोभ तथा मोह आदि अमिश्रित तमोगुण के कार्य हैं। तीनों गुणों के मिश्रण में हमें ''मैं'' और ''मेरा'' का भाव, शरीर, मन तथा वाणी द्वारा इस मनोवृत्ति के अनुसार आचरण, धर्म पर अटल रहना, आर्थिक उन्नति तथा इन्द्रियतृप्ति और भौतिक लाभ हेतु अपने वृत्तिपरक कार्य का दृढ़ अनुगमन मिलते हैं।

सतोगुणी चरित्र वाला व्यक्ति बिना किसी लाभ की इच्छा के भक्तिभाव से भगवान् हरि की पूजा करता है। इसके विपरीत, जो व्यक्ति भगवान् की पूजा से मिलने वाले फल के लिए लालायित रहता है, वह स्वभाव से रजोगुणी है। जो व्यक्ति हिंसा पसन्द करता है, वह तमोगुणी है। ये सतो, रजो तथा तमोगुण अत्यन्त सूक्ष्म जीव में पाये जाते हैं किन्तु भगवान् भौतिक प्रकृति के इन तीनों गुणों से परे हैं।

वस्तु, स्थान तथा कर्मफल, काल के साथ, कर्म के भीतर निहित ज्ञान, कार्य, कर्ता, उसकी श्रद्धा, उसकी जागरूकता, उसकी आध्यात्मिक प्रगति तथा मृत्यु के बाद उसका गन्तव्य—ये सब तीनों गुणों में हाथ बँटाते हैं और ख्याति तथा कुलों के रूप में नाना प्रकार से प्रकट होते हैं। किन्तु भगवान् से सम्बन्धित वस्तुएँ, उनसे सम्बन्धित स्थान, उन पर आधारित सुख, उनकी पूजा में लगाया गया समय, उनसे सम्बन्धित ज्ञान, उनको अर्पित किया गया कर्म, उनकी शरण में कर्म करने वाला कर्ता, उनकी भक्ति में श्रद्धा, आध्यात्मिक लोक में जाने की ओर प्रगति तथा परमेश्वर का धाम—ये सभी भौतिक गुणों से परे हैं।

इस संसार-चक्र में आत्मा के लिए अनेक गन्तव्य तथा जीवन-स्थितियाँ हैं। ये सब प्रकृति के गुणों तथा उन पर निर्भर सकाम कर्म पर आधारित हैं। एकमात्र भगवान् के शुद्ध भक्तियोग से ही मूलत: मन में उत्पन्न होने वाले तीनों गुणों को जीता जा सकता है। मनुष्य-शरीर पाकर जिसमें ज्ञान तथा अनुभूति को विकसित करने की क्षमता है, बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि प्रकृति के इन तीन गुणों की संगति त्याग दे और तब भगवान् की पूजा करे। सर्वप्रथम सतोगुण में वृद्धि करके वह रजो तथा तमोगुणों को परास्त कर सकता है। तब वह आध्यात्मिक पद पर चेतना को विकसित करके भौतिक सत्त्व को जीत सकता है। उस समय वह भौतिक गुणों से पूर्णतया मुक्त हो जाता है, अपना सूक्ष्म शरीर (मन, बुद्धि तथा अहंकार) छोड़ देता है और भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करता है। अपने सूक्ष्म आवरण को छिन्न-भिन्न करके, जीव परमेश्वर का साक्षात्कार कर सकता है और इस प्रकार उनकी दया से चरम सिद्धि को प्राप्त होता है।

श्रीभगवानुवाच

गुणानामसम्मिश्राणां पुमान्येन यथा भवेत् ।
तन्मे पुरुषवर्येदमुपधारय शंसत: ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; गुणानाम्—प्रकृति के गुणों के; असम्मिश्राणाम्—शुद्ध अवस्था वाले; पुमान्—व्यक्ति; येन—जिस गुण से; यथा—कैसे; भवेत्—बन जाता है; तत्—वह; मे—मुझसे; पुरुष-वर्य—हे पुरुषों में श्रेष्ठ; इदम्—यह; उपधारय—समझने का प्रयत्न करो; शंसत:—मेरे द्वारा कहा हुआ।

भगवान् ने कहा : हे पुरुष-श्रेष्ठ, मैं तुमसे वर्णन करूँगा कि जीव किस तरह किसी भौतिक गुण की संगति से विशेष स्वभाव प्राप्त करता है। तुम उसे सुनो।

तात्पर्य : *असंमिश्र* शब्द उसे सूचित करता है, जिसमें अन्य कोई वस्तु मिली न हो। अब श्रीकृष्ण यह बतलाने जा रहे हैं कि तीनों गुण (सतो, रजो तथा तमो) किस तरह पृथक्-पृथक् कार्य करते हुए बद्धजीव को कैसे विशेष अस्तित्व प्रकट करने के लिए बाध्य करते हैं। जीव भगवान् कृष्ण का अंश होने के कारण अन्तत: प्रकृति के गुणों से परे होता है किन्तु बद्ध जीवन में वह भौतिक गुण प्रकट करता है। इसका वर्णन अगले श्लोकों में हुआ है।

शमो दमस्तितिक्षेक्षा तप: सत्यं दया स्मृति: ।

तुष्टिस्त्यागोऽस्पृहा श्रद्धा ह्रीर्दयादिः स्वनिर्वृतिः ॥ २ ॥
काम ईहा मदस्तृष्णा स्तम्भ आशीर्भिदा सुखम् ।
मदोत्साहो यशःप्रीतिर्हास्यं वीर्यं बलोद्यमः ॥ ३ ॥
क्रोधो लोभोऽनृतं हिंसा याच्ञा दम्भः क्लमः कलिः ।
शोकमोहौ विषादार्ती निद्राशा भीरनुद्यमः ॥ ४ ॥
सत्त्वस्य रजसश्चैतास्तमसश्चानुपूर्वशः ।
वृत्तयो वर्णितप्रायाः सन्निपातमथो शृणु ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

शमः—मन का संयम; दमः—इन्द्रिय संयम; तितिक्षा—सहिष्णुता; ईक्षा—संकल्प; तपः—अपने नियत कार्य का दृढ़तापूर्वक पालन; सत्यम्—सत्य; दया—दया; स्मृतिः—भूत तथा भविष्य का अवलोकन; तुष्टिः—सन्तोष; त्यागः—उदारता; अस्पृहा—इन्द्रियतृप्ति से विरक्ति; श्रद्धा—(गुरु तथा अन्य प्रामाणिक विद्वानों के प्रति) श्रद्धा; ह्रीः—लज्जा (अनुचित कार्य से); दया-आदिः—दान, सरलता, दीनता आदि; स्व-निर्वृतिः—भीतर से आनन्द मनाने; कामः—भौतिक इच्छा; ईहा—उद्योग, प्रयत्न; मदः—घमंड; तृष्णा—असंतोष; स्तम्भः—मिथ्या गर्व; आशीः—भौतिक लाभ के लिए देवी-देवताओं से प्रार्थना; भिदा—विलगाववादी प्रवृत्ति; सुखम्—इन्द्रियतृप्ति; मद-उत्साहः—नशे पर आधारित हिम्मत; यशः-प्रीतिः—प्रशंसा का भूखा; हास्यम्—हँसी उड़ाने में रत; वीर्यम्—अपनी शक्ति का प्रचार करने वाला; बल-उद्यमः—अपने बलबूते पर कार्य करने वाला; क्रोधः—असह्य क्रोध; लोभः—लालच; अनृतम्—असत्य भाषण (शास्त्र विरुद्ध बोलना); हिंसा—दुश्मनी; याच्ञा—याचना करना; दम्भः—दिखावा; क्लमः—थकान; कलिः—कलह; शोक-मोहौ—शोक तथा मोह; विषाद-आर्ती—दुख तथा झूठी दीनता; निद्रा—नींद, अँगडाई; आशा—झूठी आशा; भीः—भय; अनुद्यमः—प्रयास का अभाव; सत्त्वस्य—सतोगुण का; रजसः—रजोगुण का; च—तथा; एताः—ये; तमसः—तमोगुण का; च—तथा; आनुपूर्वशः—एक के बाद दूसरा; वृत्तयः—कार्य; वर्णित—कहे गये; प्रायाः—अधिकांशतः; सन्निपातम्—इन सबों का मेल; अथो—अब; शृणु—सुनो।

मन तथा इन्द्रिय संयम, सहिष्णुता, विवेक, नियत कर्म का पालन, सत्य, दया, भूत तथा भविष्य का सतर्क अध्ययन, किसी भी स्थिति में सन्तोष, उदारता, इन्द्रियतृप्ति का परित्याग, गुरु में श्रद्धा, अनुचित कर्म करने पर व्यग्रता, दान, सरलता, दीनता तथा अपने में संतोष—ये सतोगुण के लक्षण हैं। भौतिक इच्छा, महान् उद्योग, मद, लाभ में भी असन्तोष, मिथ्या अभिमान, भौतिक उन्नति के लिए प्रार्थना, अन्यों से अपने को विलग तथा अच्छा मानना, इन्द्रियतृप्ति, लड़ने की छटपटाहट, अपनी प्रशंसा सुनने की चाह, अन्यों का मजाक उड़ाने की प्रवृत्ति, अपने बल का विज्ञापन तथा अपने बल के द्वारा अपने कर्मों को सही बताना—ये रजोगुण के लक्षण हैं। असह्य क्रोध, कंजूसी, शास्त्रीय आधार के बिना बोलना, उग्र घृणा, परोपजीवन, दिखावा, अति थकान, कलह, शोक, मोह, दुख, उदासी, अत्यधिक निद्रा, झूठी आशा, भय तथा आलस्य—ये तमोगुणी लक्षण हैं। अब इन तीनों के मिश्रण के बारे में सुनो।

सन्निपातस्त्वहमिति ममेत्युद्धव या मतिः ।
व्यवहारः सन्निपातो मनोमात्रेन्द्रियासुभिः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

सन्निपातः—गुणों का मिश्रण; तु—तथा; अहम् इति—मैं; मम इति—''मेरा''; उद्धव—हे उद्धव; या—जो; मतिः—मनोवृत्ति; व्यवहारः—सामान्य कार्यकलाप; सन्निपातः—संयोग, मिश्रण; मनः—मन; मात्रा—अनुभूति के पदार्थों; इन्द्रिय—इन्द्रियों; असुभिः—तथा प्राण-वायुओं द्वारा।

हे उद्धव, ''मैं'' तथा ''मेरा'' मनोवृत्ति में तीनों गुणों का संमिश्रण रहता है। इस जगत के सामान्य व्यवहार, जो मन, अनुभूति के विषयों (तन्मात्राओं), इन्द्रियों तथा शरीर की प्राण-वायु द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं, भी गुणों के सम्मिश्रण पर आधारित होते हैं।

तात्पर्य : ''मैं'' और ''मेरा'' की भ्रामक धारणा प्रकृति के गुणों के मिश्रण से बनती है। सतोगुणी मनुष्य अनुभव कर सकता है, ''मैं शान्त हूँ''। रजोगुणी व्यक्ति सोच सकता है, ''मैं कामी हूँ'' और तमोगुणी व्यक्ति सोच सकता है ''मैं क्रुद्ध हूँ''। इसी तरह कोई सोच सकता है, ''मेरी शान्ति,'' ''मेरा काम'' या ''मेरा क्रोध''। शान्त रहने की पूर्ण मनोवृत्ति वाला व्यक्ति भौतिक जगत में कार्य नहीं कर सकता, उसमें कार्य करने की प्रेरणा का अभाव होगा। इसी तरह विषय-वासना में लीन रहने वाला व्यक्ति लेशमात्र शान्ति या संयम के बिना मदान्ध बन जायेगा। क्रोध से अभिभूत व्यक्ति अन्य गुणों के मिश्रण के बिना भौतिक संसार में ठीक से कार्य नहीं कर पायेगा। अतः हम देखते हैं कि कोई गुण कभी शुद्ध अवस्था में तथा पृथक् रूप में नहीं मिलता प्रत्युत वह अन्य गुणों में मिश्रित रहता है, जिससे इस जगत में सामान्य रूप से कार्य चलते रहते हैं। अन्ततः मनुष्य को सोचना चाहिए, ''मैं कृष्ण का नित्य दास हूँ'' और ''मेरी एकमात्र सम्पत्ति भगवान् की प्रेमाभक्ति है।'' यही चेतना की शुद्ध अवस्था है, जो प्रकृति के गुणों से परे है।

धर्मे चार्थे च कामे च यदासौ परिनिष्ठितः ।
गुणानां सन्निकर्षोऽयं श्रद्धारतिधनावहः ॥ ७॥

शब्दार्थ

धर्मे—धर्म में; च—तथा; अर्थे—आर्थिक विकास में; च—तथा; कामे—इन्द्रियतृप्ति में; च—तथा; यदा—जब; असौ—यह जीव; परिनिष्ठितः—स्थिर है; गुणानाम्—प्रकृति के गुणों के; सन्निकर्षः—मिश्रण में; अयम्—यह; श्रद्धा—श्रद्धा; रति—यौन भोग; धन—तथा धन; आवहः—जिसे हर एक लाता है।

जब मनुष्य धर्म, अर्थ तथा काम में अपने आप को लगाता है, तो उसके उद्योग से प्राप्त श्रद्धा, सम्पत्ति तथा यौन-सुख प्रकृति के तीनों गुणों की अन्योन्य क्रिया को प्रदर्शित करते हैं।

तात्पर्य : धर्म, अर्थ तथा काम—ये प्रकृति के गुणों में स्थित होते हैं और उनसे प्राप्त श्रद्धा,

सम्पत्ति तथा भोग प्रकृति के गुणों के भीतर मनुष्य की विशिष्ट अवस्था को बताते हैं।

प्रवृत्तिलक्षणे निष्ठा पुमान्यर्हि गृहाश्रमे ।
स्वधर्मे चानु तिष्ठेत गुणानां समितिर्हि सा ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

प्रवृत्ति—भौतिक भोग के मार्ग के; लक्षणे—लक्षण वाले में; निष्ठा—समर्पण; पुमान्—मनुष्य; यर्हि—जब; गृह-आश्रमे—पारिवारिक जीवन में; स्व-धर्मे—नियत कार्यों में; च—तथा; अनु—बाद में; तिष्ठेत—खड़ा रहता है; गुणानाम्—गुणों की; समितिः—संयोग, मेल; हि—निस्सन्देह; सा—यह।

जब मनुष्य पारिवारिक जीवन में अनुरक्त होने से इन्द्रियतृप्ति चाहता है और इसके फलस्वरूप जब वह धार्मिक तथा वृत्तिपरक कार्यों में स्थित हो जाता है, तो प्रकृति के गुणों का मिश्रण प्रकट होता है।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार, स्वर्ग जाने के लिए सम्पन्न किये जाने वाले धार्मिक कार्य रजोगुणी माने जाते हैं, सामान्य पारिवारिक जीवन का भोग करने के लिए सम्पन्न होने वाले कार्य तमोगुणी होते हैं तथा वर्णाश्रम प्रणाली में अपने वृत्तिपरक कार्य को पूरा करने के लिए निःस्वार्थ भाव से सम्पन्न कार्य सतोगुणी होते हैं। इस तरह भगवान् ने बतलाया है कि किस तरह प्रकृति के गुणों के भीतर सांसारिक धर्म प्रकट होता है।

पुरुषं सत्त्वसंयुक्तमनुमीयाच्छमादिभिः ।
कामादिभी रजोयुक्तं क्रोधाद्यैस्तमसा युतम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

पुरुषम्—व्यक्ति; सत्त्व-संयुक्तम्—सतोगुण से युक्त; अनुमीयात्—निकाला जा सकता है; शम-आदिभिः—इन्द्रिय-संयम के गुणों आदि से; काम-आदिभिः—विषय-वासना आदि से; रजः-युक्तम्—रजोगुणी व्यक्ति; क्रोध-आद्यैः—क्रोध इत्यादि से; तमसा—तमोगुण से; युतम्—युक्त।

आत्मसंयम जैसे गुणों को प्रदर्शित करने वाला व्यक्ति मुख्यतया सतोगुणी माना जाता है। इसी तरह रजोगुणी व्यक्ति अपनी विषय-वासना से पहचाना जाता है तथा तमोगुणी व्यक्ति क्रोध जैसे गुण से पहचाना जाता है।

यदा भजति मां भक्त्या निरपेक्षः स्वकर्मभिः ।
तं सत्त्वप्रकृतिं विद्यात्पुरुषं स्त्रियमेव वा ॥ १० ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; भजति—पूजा करता है; माम्—मेरी; भक्त्या—भक्तिपूर्वक; निरपेक्षः—फल की परवाह न करने वाला; स्व-कर्मभिः—अपने नियत कार्यों से; तम्—उसको; सत्त्व-प्रकृतिम्—सतोगुणी स्वभाव वाला व्यक्ति; विद्यात्—समझे; पुरुषम्—पुरुष को; स्त्रियम्—स्त्री को; एव—भी; वा—अथवा।

कोई व्यक्ति, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, यदि अपने नियत कार्यों को बिना किसी आसक्ति के मुझे अर्पित करते हुए मेरी पूजा करता है, तो वह सतोगुणी समझा जाता है।

यदा आशिष आशास्य मां भजेत स्वकर्मभिः ।
तं रजःप्रकृतिं विद्यात् हिंसामाशास्य तामसम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; आशिषः—आशीर्वाद; आशास्य—की आशा से; माम्—मुझको; भजेत—पूजता है; स्व-कर्मभिः—अपने कार्यों से; तम्—उसको; रजः-प्रकृतिम्—रजोगुणी व्यक्ति; विद्यात्—समझे; हिंसाम्—हिंसा; आशास्य—की आशा करते हुए; तामसम्—तमोगुणी व्यक्ति।

जब कोई व्यक्ति भौतिक लाभ पाने की आशा से अपने नियत कर्मों द्वारा मेरी पूजा करता है, उसका स्वभाव रजोगुणी समझना चाहिए और जब कोई व्यक्ति अन्यों के साथ हिंसा करने की इच्छा से मेरी पूजा करता है, वह तमोगुण में स्थित होता है।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणा जीवस्य नैव मे ।
चित्तजा यैस्तु भूतानां सज्जमानो निबध्यते ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

सत्त्वम्—सतोगुण; रजः—रजोगुण; तमः—तमोगुण; इति—इस प्रकार; गुणाः—गुण; जीवस्य—आत्मा से सम्बन्धित; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; मे—मुझको; चित्त-जाः—मन के भीतर प्रकट; यैः—जिन गुणों से; तु—तथा; भूतानाम्—भौतिक प्राणियों का; सज्जमानः—अनुरक्त होकर; निबध्यते—बाँधा जाता है।

प्रकृति के तीनों गुण—सतो, रजो तथा तमोगुण—जीव को तो प्रभावित करते हैं, मुझे नहीं। उसके मन में प्रकट होकर ये जीव को भौतिक शरीरों तथा अन्य उत्पन्न वस्तुओं से अनुरक्त होने के लिए प्रेरित करते हैं। इस तरह जीव बँध जाता है।

तात्पर्य : जीव भगवान् की तटस्था शक्ति है और वह भगवान् की मोहमयी शक्ति द्वारा अभिभूत होने की संभावना रखता है। किन्तु भगवान् मोह के परम नियन्ता हैं। मोह कभी भी भगवान् को नियंत्रित नहीं कर सकता। इस तरह भगवान् श्रीकृष्ण सारे जीवों के लिए सेवा के नित्य लक्ष्य हैं और ये जीव भगवान् के नित्य दास हैं।

प्रकृति के तीनों गुण भौतिक शक्ति में प्रकट होते हैं। जब बद्धात्मा भौतिक मनोवृत्ति ग्रहण करता है, तो ये गुण उस मनोवृत्ति की सीमा के भीतर अपना प्रभाव दिखाते हैं। किन्तु यदि कोई व्यक्ति अपने

मन को भगवद्भक्ति से शुद्ध बना लेता है, तो प्रकृति के गुण उस पर और अधिक प्रभाव नहीं डालते क्योंकि आध्यात्मिक स्तर पर उनका प्रभाव नहीं होता।

यदेतरौ जयेत्सत्त्वं भास्वरं विशदं शिवम् ।
तदा सुखेन युज्येत धर्मज्ञानादिभिः पुमान् ॥ १३॥

शब्दार्थ

यदा—जब; इतरौ—अन्य दो; जयेत्—जीत लेता है; सत्त्वम्—सतोगुण; भास्वरम्—प्रकाशमान; विशदम्—शुद्ध; शिवम्—शुभ; तदा—तब; सुखेन—सुख से; युज्येत—से युक्त होता है; धर्म—धर्म; ज्ञान—ज्ञान; आदिभिः—आदि अन्य गुणों से; पुमान्—मनुष्य।

जब प्रदीप्त शुद्ध तथा शुभ सतोगुण रजोगुण तथा तमोगुण पर हावी होता है, तो मनुष्य सुख, प्रतिभा, ज्ञान तथा अन्य गुणों से युक्त हो जाता है।

तात्पर्य : सतोगुण में मनुष्य अपने मन तथा इन्द्रियों को वश में कर सकता है।

यदा जयेत्तमः सत्त्वं रजः सङ्गं भिदा चलम् ।
तदा दुःखेन युज्येत कर्मणा यशसा श्रिया ॥ १४॥

शब्दार्थ

यदा—जब; जयेत्—जीत लेता है; तमः सत्त्वम्—तमो तथा सतोगुण; रजः—रजो; सङ्गम्—अनुरक्ति (का कारण); भिदा—विलगाव; चलम्—तथा परिवर्तन; तदा—तब; दुःखेन—दुख से; युज्येत—युक्त हो जाता है; कर्मणा—भौतिक कार्य से; यशसा—यश (की इच्छा) से; श्रिया—तथा ऐश्वर्य से।

जब अनुरक्ति, विलगाव तथा कर्मठता का कारणरूप रजोगुण, तमोगुण तथा सतोगुण को जीत लेता है, तो मनुष्य प्रतिष्ठा तथा सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए कठिन श्रम करने लगता है। इस तरह रजोगुण में मनुष्य चिन्ता तथा संघर्ष का अनुभव करता है।

यदा जयेद् रजः सत्त्वं तमो मूढं लयं जडम् ।
युज्येत शोकमोहाभ्यां निद्रया हिंसयाशया ॥ १५॥

शब्दार्थ

यदा—जब; जयेत्—जीत लेता है; रजः सत्त्वम्—रजोगुण तथा सतोगुण; तमः—तमोगुण; मूढम्—विवेक-शक्ति को खो चुका; लयम्—चेतना के ऊपर का आवरण; जडम्—उद्योग से विहीन; युज्येत—युक्त हो जाता है; शोक—शोक; मोहाभ्याम्—तथा मोह से; निद्रया—अत्यधिक सोने से; हिंसया—हिंसक गुणों से; आशया—तथा झूठी आशाओं से।

जब तमोगुण रजोगुण तथा सतोगुणों को जीत लेता है, तो वह मनुष्य की चेतना को ढक लेता है और उसे मूर्ख तथा जड़ बना देता है। तमोगुणी मनुष्य शोक तथा मोह में पड़ कर अत्यधिक सोता है, झूठी आशा करने लगता है और अन्यों के प्रति हिंसा प्रदर्शित करता है।

यदा चित्तं प्रसीदेत इन्द्रियाणां च निर्वृतिः ।
देहेऽभयं मनोऽसङ्गं तत्सत्त्वं विद्धि मत्पदम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; चित्तम्—चेतना; प्रसीदेत—स्वच्छ हो जाती है; इन्द्रियाणाम्—इन्द्रियों की; च—तथा; निर्वृतिः—संसारी कार्यों की समाप्ति; देहे—शरीर में; अभयम्—निर्भयता; मनः—मन की; असङ्गम्—विरक्ति; तत्—उसे; सत्त्वम्—सतोगुण; विद्धि—जानो; मत्—मेरा साक्षात्कार; पदम्—वह पद जिसमें इसे प्राप्त किया जा सके।

जब चेतना स्वच्छ हो जाती हैं और इन्द्रियाँ पदार्थ से विरक्त हो जाती हैं, तो मनुष्य भौतिक शरीर के भीतर निर्भीकता तथा भौतिक मन से विरक्ति का अनुभव करता है। इस स्थिति को सतोगुण की प्रधानता समझना चाहिए क्योंकि इसमें मनुष्य को मेरा साक्षात्कार करने का अवसर मलिता है।

विकुर्वन्क्रियया चाधीरनिवृत्तिश्च चेतसाम् ।
गात्रास्वास्थ्यं मनो भ्रान्तं रज एतैर्निशामय ॥ १७॥

शब्दार्थ

विकुर्वन्—विकृत होकर; क्रियया—कर्म से; च—तथा; आ—तक; धीः—बुद्धि; अनिवृत्तिः—रोक न पाना; च—एवं; चेतसाम्—बुद्धि तथा इन्द्रियों की चेतनता पर; गात्र—कर्मेन्द्रियों का; अस्वास्थ्यम्—अस्वस्थ स्थिति; मनः—मन; भ्रान्तम्—अस्थिर; रजः—रजोगुण; एतैः—इन लक्षणों से; निशामय—तुम्हें समझना चाहिए।

तुम्हें रजोगुण का पता उसके लक्षणों से—अत्यधिक कर्म के कारण बुद्धि की विकृति, अनुभव करने वाली इन्द्रियों की संसारी वस्तुओं से अपने को छुड़ाने की असमर्थता, कर्मेन्द्रियों की अस्वस्थ दशा तथा मन की अस्थिरता से—लगा लेना चाहिये।

सीदच्चित्तं विलीयेत चेतसो ग्रहणेऽक्षमम् ।
मनो नष्टं तमो ग्लानिस्तमस्तदुपधारय ॥ १८॥

शब्दार्थ

सीदत्—विफल हो जाती है; चित्तम्—चेतना की उच्चतर इन्द्रिय; विलीयेत—विलीन हो जाती है; चेतसः—जागरूकता; ग्रहणे—नियंत्रित करने में; अक्षमम्—अक्षम; मनः—मन; नष्टम्—विनष्ट; तमः—अज्ञान; ग्लानिः—विषाद; तमः—तमोगुण; तत्—वह; उपधारय—तुम समझो।

जब मनुष्य की उच्चतर जागरूकता काम न दे और अन्त में लुप्त हो जाय तथा इस तरह मनुष्य अपना ध्यान एकाग्र न कर सके, तो उसका मन नष्ट हो जाता है और अज्ञान तथा विषाद प्रकट करता है। तुम इस स्थिति को तमोगुण की प्रधानता समझो।

एधमाने गुणे सत्त्वे देवानां बलमेधते ।
असुराणां च रजसि तमस्युद्धव रक्षसाम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

एधमाने—वृद्धि करता हुआ; गुणे—गुण में; सत्त्वे—सतो; देवानाम्—देवताओं की; बलम्—शक्ति; एधते—बढ़ती है; असुराणाम्—देवताओं के शत्रुओं की; च—तथा; रजसि—रजोगुण के बढ़ने पर; तमसि—तमोगुण के बढ़ने पर; उद्धव—हे उद्धव; रक्षसाम्—मानव भक्षियों को।

सतोगुण की वृद्धि होने के साथ साथ, देवताओं की शक्ति भी बढ़ती जाती है। जब रजोगुण बढ़ता है, तो असुरगण प्रबल हो उठते हैं और तमोगुण की वृद्धि से हे उद्धव! अत्यन्त दुष्ट लोगों की शक्ति बढ़ जाती है।

सत्त्वाज्जागरणं विद्याद्रजसा स्वप्नमादिशेत् ।
प्रस्वापं तमसा जन्तोस्तुरीयं त्रिषु सन्ततम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

सत्त्वात्—सतोगुण से; जागरणम्—जागरूक चेतना; विद्यात्—समझे; रजसा—रजोगुण से; स्वप्नम्—नींद; आदिशेत्—सूचित होती है; प्रस्वापम्—गहरी नींद; तमसा—तमोगुण से; जन्तोः—जीव की; तुरीयम्—चतुर्थ दिव्य अवस्था; त्रिषु—तीनों में; सन्ततम्—व्याप्त।

यह जान लेना चाहिए कि जागरूक चैतन्यता सतोगुण से आती है, नींद रजोगुणी स्वप्न देखने से तथा गहरी स्वप्नरहित नींद तमोगुण से आती है। चेतना की चतुर्थ अवस्था इन तीनों में व्याप्त रहती है और दिव्य होती है।

तात्पर्य : हमारी आदि कृष्ण-चेतना आत्मा के भीतर शाश्वत विद्यमान रहती है और यह जागरूकता की तीनों अवस्थाओं—सामान्य जागृति, स्वप्न तथा सुषुप्ति—में भी रहती है। प्रकृति के गुणों से आच्छादित होने से हो सकता है कि यह आध्यात्मिक चेतना प्रकट न हो किन्तु यह असली स्वभाव के रूप में जीव में शाश्वत विद्यमान रहती है।

उपर्युपरि गच्छन्ति सत्त्वेन ब्राह्मणा जनाः ।
तमसाधोऽध आमुख्याद्रजसान्तरचारिणः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

उपरि उपरि—ऊँचे और ऊँचे; गच्छन्ति—जाते हैं; सत्त्वेन—सतोगुण से; ब्राह्मणाः—वैदिक सिद्धान्तों के प्रति समर्पित लोग; जनाः—ऐसे लोग; तमसा—तमोगुण द्वारा; अधः अधः—नीचे और नीचे; आ-मुख्यात्—सिर के बल; रजसा—रजोगुण द्वारा; अन्तर-चारिणः—मध्यवर्ती स्थितियों में रहते हुए।

वैदिक संस्कृति के प्रति समर्पित विद्वान पुरुष सतोगुण से उत्तरोत्तर उच्च पदों को प्राप्त होते हैं। किन्तु तमोगुण मनुष्य को सिर के बल निम्न से निम्नतर जन्मों में गिरने के लिए बाध्य करता

है। रजोगुण से मनुष्य मानव शरीरों में से होकर निरन्तर देहान्तरण करता रहता है।

तात्पर्य : शूद्र लोग अर्थात् तमोगुणी लोग जीवन के लक्ष्य के विषय में गहरे भ्रम में रहते हैं क्योंकि वे स्थूल शरीर को आत्मा मान बैठते हैं। रजोगुणी तथा तमोगुणी लोग वैश्य कहलाते हैं, जो धन के लिए अत्यन्त लालायित रहते हैं जबकि रजोगुणी क्षत्रिय प्रतिष्ठा तथा अधिकार के लिए उत्सुक रहते हैं। किन्तु जो सतोगुणी होते हैं, वे पूर्ण ज्ञान के लिए लालायित रहते हैं; इसलिए वे ब्राह्मण कहलाते हैं। ऐसा व्यक्ति ब्रह्मलोक के परम भौतिक पद को प्राप्त होता है। जो व्यक्ति तमोगुणी होता है, वह धीरे धीरे जड़ योनियों को, यथा वृक्ष तथा पत्थर को, प्राप्त होता है, जबकि रजोगुणी व्यक्ति को, इच्छा से पूरित होते हुए किन्तु वैदिक संस्कृति के अन्तर्गत उसे तुष्ट करते हुए, मानव समाज में रहने दिया जाता है।

सत्त्वे प्रलीना: स्वर्यान्ति नरलोकं रजोलया: ।
तमोलयास्तु निरयं यान्ति मामेव निर्गुणा: ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

सत्त्वे—सतोगुण में; प्रलीना:—मरने वाले; स्व:—स्वर्ग; यान्ति—जाते हैं; नर-लोकम्—मनुष्य लोक में; रज:-लया:—रजोगुण में मरने वाले; तम:-लया:—तमोगुण में मरने वाले; तु—तथा; निरयम्—नरक में; यान्ति—जाते हैं; माम्—मुझ तक; एव—किन्तु; निर्गुणा:—समस्त गुणों से रहित हैं, जो।

जो लोग सतोगुण में रहते हुए इस जगत को छोड़ते हैं, वे स्वर्गलोक जाते हैं; जो रजोगुण में रहते हुए छोड़ते हैं, वे मनुष्य-लोक में रह जाते हैं और तमोगुण में मरने वाले नरक-लोक में जाते हैं। किन्तु जो प्रकृति के सारे गुणों से मुक्त हैं, वे मेरे पास आते हैं।

मदर्पणं निष्फलं वा सात्त्विकं निजकर्म तत् ।
राजसं फलसङ्कल्पं हिंसाप्रायादि तामसम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

मत्-अर्पणम्—मुझे अर्पित; निष्फलम्—किसी फल-प्राप्ति की आशा के बिना सम्पन्न; वा—तथा; सात्त्विकम्—सतोगुण में; निज—अपना नियत कर्म मान कर; कर्म—कार्य; तत्—वह; राजसम्—रजोगुणी; फल-सङ्कल्पम्—किसीफल प्राप्ति की आशा से सम्पन्न; हिंसा-प्राय-आदि—हिंसा, ईर्ष्या आदि के बिना सम्पन्न; तामसम्—तमोगुण में।

फल का विचार किये बिना जो कर्म मुझे अपिर्त किया जाता है, वह सतोगुणी माना जाता है। फल की भोगेच्छा से सम्पन्न कर्म रजोगुणी है और हिंसा तथा ईर्ष्या से प्रेरित कर्म तमोगुणी होता है।

तात्पर्य : निष्काम भाव से तथा ईश्वर को भेंटस्वरूप सम्पन्न सामान्य कार्य सात्त्विक माना जाता है, जबकि भक्ति के कार्य—यथा भगवद्-गुणों का श्रवण तथा कीर्तन—प्रकृति के गुणों से परे दिव्य कर्म होते हैं।

कैवल्यं सात्त्विकं ज्ञानं रजो वैकल्पिकं च यत् ।
प्राकृतं तामसं ज्ञानं मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

कैवल्यम्—केवल, परम; सात्त्विकम्—सतोगुणी; ज्ञानम्—ज्ञान; रजः—रजोगुण; वैकल्पिकम्—कई; च—तथा; यत्—जो; प्राकृतम्—भौतिकतावादी; तामसम्—तमोगुणी; ज्ञानम्—ज्ञान; मत्-निष्ठम्—मुझमें एकाग्र चित्त; निर्गुणम्—दिव्य; स्मृतम्—माना जाता है।

परम ज्ञान सात्त्विक होता है; द्वैत पर आधारित ज्ञान राजसी होता है और मूर्खतापूर्ण भौतिकतावादी ज्ञान तामसिक है। किन्तु जो ज्ञान मुझ पर आधारित होता है, वह दिव्य माना जाता है।

तात्पर्य : परम पुरुष भगवान् विषयक दिव्य ज्ञान सामान्य सात्विक धार्मिक ज्ञान से परे है, यहाँ पर भगवान् इसकी व्याख्या करते हैं। सात्विक गुण में मनुष्य सारे जीवों के भीतर उच्चतर आध्यात्मिक प्रकृति की उपस्थिति को समझता है। रजोगुण में वही मनुष्य शरीर का वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करता है और तमोगुण में उसका मन इन्द्रिय-विषयों में केन्द्रित होने के कारण, उसमें उच्चतर जागरूकता नहीं रह जाती और वह वस्तुओं को इस तरह देखता है जैसे छोटे बच्चे या बाधित व्यक्ति देखते हों।

श्रील जीव गोस्वामी ने इस श्लोक की विस्तृत टीका की है। उनका कथन है कि सात्विक गुण परब्रह्म का पूर्ण ज्ञान प्रदान नहीं करता। वे *श्रीमद्भागवत* से (६.१४.२) कई उदाहरण देते हैं जिनमें अनेक देवता सात्विक होते हुए भी भगवान् कृष्ण के दिव्य व्यक्तित्व को नहीं समझ पाते। भौतिक सतोगुण में मनुष्य पवित्र या धार्मिक तथा उच्चतर आध्यात्मिक प्रकृति के प्रति भिज्ञ हो जाता है। किन्तु शुद्ध सतोगुण के आध्यात्मिक स्तर पर मनुष्य परब्रह्म से प्रत्यक्ष प्रेममय सम्बन्ध स्थापित कर लेता है और संसारी शुद्धता से मात्र जुड़े रहने की बजाये, भगवान् की सेवा में लग जाता है। रजोगुण में बद्धजीव अपने जीवन तथा अपने चारों ओर के जगत की वास्तविकता के बारे में कल्पना करता है और कल्पना से भगवद्धाम के अस्तित्व के विषय में भी सोचता है। तमोगुण में वह अपने मन को विविध प्रकार से खाने, सोने, संभोग करने तथा रक्षा करने में लीन करके, इन्द्रियतृप्ति के विषय में ज्ञान

प्राप्त करता है। इस तरह प्रकृति के गुणों के अन्तर्गत बद्धात्माएँ या तो अपनी इन्द्रियों को तुष्ट करने में या फिर अपने को इन्द्रियतृप्ति से मुक्त करने में लगी रहती हैं। किन्तु जब तक वे प्रकृति के गुणों से परे कृष्णभावनामृत के दिव्य पद को प्राप्त नहीं हो लेतीं, वे अपने को अपने स्वाभाविक मुक्त कार्यों में लगा नहीं पातीं।

वनं तु सात्त्विको वासो ग्रामो राजस उच्यते ।
तामसं द्यूतसदनं मन्निकेतं तु निर्गुणम् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

वनम्—जंगल; तु—जबकि; सात्त्विकः—सतोगुणी; वासः—आवास; ग्रामः—गाँव; राजसः—रजोगुणी; उच्यते—कहा जाता है; तामसम्—तमोगुणी; द्यूत-सदनम्—जुआ खेलने का स्थान; मत्-निकेतम्—मेरा निवास; तु—लेकिन; निर्गुणम्—दिव्य।

जंगल का वास सतोगुणी, कस्बे का वास रजोगुणी, जुआ घर का वास तमोगुणी तथा मेरे धाम का वास दिव्य होता है।

तात्पर्य : जंगल के अनेक प्राणी, यथा वृक्ष, जंगली सुअर तथा कीड़े-मकोड़े, वस्तुतः रजोगुणी तथा तमोगुणी होते हैं। किन्तु जंगल का वास इसलिए सतोगुणी (सात्विक) कहा गया है क्योंकि वहाँ पर पापमय कार्यों, भौतिक ऐश्वर्य तथा कामुक इच्छाओं से मुक्त एकान्त जीवन बिताया जा सकता है। भारत के इतिहास में सभी प्रकार के लाखों लोग वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम स्वीकार करके तपस्या करने तथा आत्म-साक्षात्कार पूरा करने के लिए जंगलों में जाते रहे हैं। यहाँ तक कि अमरीका तथा अन्य पाश्चात्य देशों में थोरो जैसे व्यक्ति ने—अपनी भौतिक उलझनों को कम करने के लिए जंगल में जाकर वास करने के कारण ही ख्याति पाई।

यहाँ पर *ग्राम* शब्द अपने परिवार के रहने के स्थान का सूचक है। पारिवारिक जीवन निश्चय ही झूठे गर्व, झूठी आशा, झूठे स्नेह, शोक तथा मोह से पूर्ण है क्योंकि पारिवारिक सम्बन्ध पूरी तरह देहात्म बुद्धि पर आश्रित होता है, जो आत्म-साक्षात्कार के बिल्कुल विपरीत है। *द्यूत-सदनम्* शब्द घुड़दौ के स्थानों, शराबखानों आदि अन्य ऐसे पापपूर्ण स्थानों का द्योतक है, जिसमें तमोगुणी चेतना की नारकीय अवस्था पाई जाती है। *मत्-निकेतनम्* वैकुण्ठ में भगवान् के निजी धाम का तथा इस जगत में भगवान् के मन्दिरों का द्योतक है जिनमें भगवान् के अर्चाविग्रह की ठीक से पूजा की जाती है। जो व्यक्ति मन्दिर-जीवन के नियमों का पालन करते हुए कृष्ण-मन्दिर में रहता है, वह दिव्य पद पर

निवसित माना जाता है। इन श्लोकों में भगवान् यही स्पष्ट करते हैं कि सारी भौतिक घटनाओं को प्रकृति के गुणों के अनुसार तीन कोटियों में रखा जा सकता है। अन्त में एक चौथी कोटि भी है, जो दिव्य कृष्णभावनामृत है और जो मानव संस्कृति के सभी पक्षों को मुक्त पद तक उठाने वाला है।

सात्त्विकः कारकोऽसङ्गी रागान्धो राजसः स्मृतः ।
तामसः स्मृतिविभ्रष्टो निर्गुणो मदपाश्रयः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

सात्त्विकः—सतोगुणी; कारकः—कर्म करने वाला, कर्ता; असङ्गी—अनुरक्ति से रहित; राग-अन्धः—निजी इच्छा से अंधा हुआ; राजसः—रजोगुणी; स्मृतः—माना जाता है; तामसः—तमोगुणी; स्मृति—कौन क्या है इसकी स्मृति से; विभ्रष्टः—पतित; निर्गुणः—दिव्य; मत्-अपाश्रयः—जिसने मेरी शरण ग्रहण कर ली है।

आसक्तिरहित कर्ता सात्विक होता है; निजी इच्छा से अंधा हुआ कर्ता राजसी तथा अच्छे-बुरे भेद को पूरी तरह भुला देने वाला कर्ता तामसिक है। किन्तु जिस कर्ता ने मेरी शरण ले रखी है, वह प्रकृति के गुणों से परे माना जाता है।

तात्पर्य : दिव्य कर्ता भगवान् कृष्ण तथा कृष्ण के प्रामाणिक प्रतिनिधि के निर्देशानुसार अपना कार्य करता है। ऐसा व्यक्ति प्रकृति के गुणों से परे रहता माना जाता है।

सात्त्विक्याध्यात्मिकी श्रद्धा कर्मश्रद्धा तु राजसी ।
तामस्यधर्मे या श्रद्धा मत्सेवायां तु निर्गुणा ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

सात्त्विकी—सतोगुणी; आध्यात्मिकी—आध्यात्मिक; श्रद्धा—श्रद्धा; कर्म—कर्म में; श्रद्धा—श्रद्धा; तु—लेकिन; राजसी—रजोगुणी; तामसी—तमोगुणी; अधर्मे—अधर्म में; या—जो; श्रद्धा—श्रद्धा; मत्-सेवायाम्—मेरी भक्ति में; तु—लेकिन; निर्गुणा—दिव्य।

आध्यात्मिक जीवन की दिशा में लक्षित श्रद्धा सात्विक होती है; सकाम कर्म पर आधारित श्रद्धा राजसी होती है और अधार्मिक कृत्यों में वास करने वाली श्रद्धा तामसी होती है किन्तु मेरी भक्ति में जो श्रद्धा की जाती है, वह शुद्ध रूप से दिव्य होती है।

पथ्यं पूतमनायस्तमाहार्यं सात्त्विकं स्मृतम् ।
राजसं चेन्द्रियप्रेष्ठं तामसं चार्तिदाशुचि ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

पथ्यम्—लाभप्रद; पूतम्—शुद्ध; अनायस्तम्—बिना कठिनाई के प्राप्त की गई; आहार्यम्—भोजन; सात्त्विकम्—सतोगुणी; स्मृतम्—माना जाता है; राजसम्—राजसी; च—तथा; इन्द्रिय-प्रेष्ठम्—इन्द्रियों को अत्यन्तप्रिय; तामसम्—तामसी; च—तथा; आर्ति-द—कष्टप्रद; अशुचि—अशुद्ध है।

जो भोजन लाभप्रद, शुद्ध तथा बिना कठिनाई के उपलब्ध हो सके, वह सात्विक होता है; जो भोजन इन्द्रियों को तुरन्त आनन्द प्रदान करता हो, वह राजसी है और जो भोजन गन्दा हो तथा कष्ट उत्पन्न करने वाला हो, वह तामसी है।

तात्पर्य : तामसी भोजन पीड़ाप्रद रोग उत्पन्न करता है और असामयिक मृत्यु लाता है।

सात्त्विकं सुखमात्मोत्थं विषयोत्थं तु राजसम् ।
तामसं मोहदैन्योत्थं निर्गुणं मदपाश्रयम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

सात्त्विकम्—सतोगुणी; सुखम्—सुख; आत्म-उत्थम्—आत्मा से उत्पन्न; विषय-उत्थम्—इन्द्रिय-विषयों से उत्पन्न; तु—लेकिन; राजसम्—राजसी; तामसम्—तामसी; मोह—मोह; दैन्य—तथा दीनता से; उत्थम्—उत्पन्न; निर्गुणम्—दिव्य; मत्-अपाश्रयम्—मेरे भीतर।

आत्मा से प्राप्त सुख सात्विक है; इन्द्रियतृप्ति पर आधारित सुख राजसी है और मोह तथा दीनता पर आधारित सुख तामसी है। किन्तु मेरे भीतर पाया जाने वाला सुख दिव्य है।

द्रव्यं देशः फलं कालो ज्ञानं कर्म च कारकः ।
श्रद्धावस्थाकृतिर्निष्ठा त्रैगुण्यः सर्व एव हि ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

द्रव्यम्—वस्तु; देशः—स्थान; फलम्—परिणाम; कालः—समय; ज्ञानम्—ज्ञान; कर्म—कर्म; च—तथा; कारकः—कर्ता; श्रद्धा—श्रद्धा; अवस्था—चेतना की अवस्था; आकृतिः—किस्म; निष्ठा—गन्तव्य; त्रै-गुण्यः—तीन गुणों वाला; सर्वः—ये सारे; एव हि—निश्चय ही।

इसलिए भौतिक वस्तु, स्थान, कर्मफल, काल, ज्ञान, कर्म, कर्ता, श्रद्धा, चेतना की दशा, जीव योनि तथा मृत्यु के बाद गन्तव्य—ये सभी प्रकृति के तीन गुणों पर आश्रित हैं।

सर्वे गुणमया भावाः पुरुषाव्यक्तधिष्ठिताः ।
दृष्टं श्रुतं अनुध्यातं बुद्ध्या वा पुरुषर्षभ ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

सर्वे—समस्त; गुण-मयाः—प्रकृति के गुणों से बने; भावाः—जीवन की स्थितियाँ; पुरुष—भोग करने वाले आत्मा द्वारा; अव्यक्त—तथा सूक्ष्म प्रकृति; धिष्ठिताः—स्थापित तथा पालित; दृष्टम्—देखा हुआ; श्रुतम्—सुना हुआ; अनुध्यातम्—सोचा हुआ; बुद्ध्या—बुद्धि के द्वारा; वा—अथवा; पुरुष-ऋषभ—हे पुरुष-श्रेष्ठ।

हे पुरुष-श्रेष्ठ, भौतिकवादिता की सारी दशाएँ भोक्ता आत्मा तथा भौतिक प्रकृति की

अन्योन्य क्रिया से सम्बन्धित हैं। चाहे वे देखी हुई हों, सुनी हुई हों या मन के भीतर सोची-विचारी गई हों, वे किसी अपवाद के बिना प्रकृति के गुणों से बनी हुई होती हैं।

एताः संसृतयः पुंसो गुणकर्मनिबन्धनाः ।
येनेमे निर्जिताः सौम्य गुणा जीवेन चित्तजाः ।
भक्तियोगेन मन्निष्ठो मद्भावाय प्रपद्यते ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

एताः—ये; संसृतयः—जगत के उत्पन्न पक्ष; पुंसः—जीव का; गुण—भौतिक गुण; कर्म—तथा कर्म से; निबन्धनाः—सम्बद्ध; येन—जिससे; इमे—ये; निर्जिताः—जीते जाते हैं; सौम्य—हे भद्र उद्धव; गुणाः—प्रकृति के गुण; जीवेन—जीव द्वारा; चित्त-जाः—मन से प्रकट होने वाले; भक्ति-योगेन—भक्ति-विधि से; मत्-निष्ठः—मेरे प्रति समर्पित; मत्-भावाय—मेरे प्रति प्रेम का; प्रपद्यते—पाता है।

हे सौम्य उद्धव, बद्ध जीवन की ये विभिन्न अवस्थाएँ प्रकृति के गुणों से पैदा हुए कर्म से उत्पन्न होती हैं। जो जीव इन गुणों को, जो मन से प्रकट होते हैं, जीत लेता है, वह भक्तियोग द्वारा अपने आपको मुझे अर्पित कर देता है और इस तरह मेरे प्रति शुद्ध प्रेम प्राप्त करता है।

तात्पर्य : *मद्-भावाय प्रपद्यते* पद ईश्वर के प्रति अथवा ईश्वर जैसी ही अवस्था के प्रति प्रेम की प्राप्ति का सूचक है। वास्तविक मोक्ष तो शाश्वत भगवद्धाम में वास है जहाँ जीवन आनन्द तथा ज्ञान से पूर्ण होता है। बद्धजीव भ्रमवश अपने को प्रकृति के गुणों का भोक्ता मान बैठता है। इस तरह एक विशेष प्रकार का कर्म उत्पन्न होता है, जिसका फल बद्धजीव को जन्म-मृत्यु के चक्र से बाँध देता है। इस निष्फल विधि का सामना भगवान् की भक्ति द्वारा ही किया जा सकता है, जैसाकि यहाँ वर्णन हुआ है।

तस्माद्देहमिमं लब्ध्वा ज्ञानविज्ञानसम्भवम् ।
गुणसङ्गं विनिर्धूय मां भजन्तु विचक्षणाः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; देहम्—शरीर; इमम्—यह; लब्ध्वा—प्राप्त करके; ज्ञान—शुष्क ज्ञान; विज्ञान—तथा अनुभूत ज्ञान का; सम्भवम्—उत्पत्ति-स्थान; गुण-सङ्गम्—गुणों का सान्निध्य; विनिर्धूय—पूरी तरह धो डालना; माम्—मुझको; भजन्तु—पूजते हैं; विचक्षणाः—अत्यन्त बुद्धिमान लोग।

इसलिए इस मनुष्य जीवन को, जो पूर्ण ज्ञान विकसित करने की छूट देता है, प्राप्त करके बुद्धिमान लोगों को चाहिए कि वे अपने को प्रकृति के गुणों के सारे कल्मष से मुक्त कर लें और एकमात्र मेरी भक्ति में लग जायें।

निःसङ्गो मां भजेद्विद्वानप्रमत्तो जितेन्द्रियः ।
रजस्तमश्चाभिजयेत्सत्त्वसंसेवया मुनिः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

निःसङ्गः—भौतिक संगति से मुक्त; माम्—मुझको; भजेत्—पूजा करें; विद्वान्—विद्वान व्यक्ति; अप्रमत्तः—जो मोहग्रस्त न हो; जित-इन्द्रियः—जिसने इन्द्रियों को जीत लिया है; रजः—रजोगुण; तमः—तमोगुण; च—तथा; अभिजयेत्—जीते; सत्त्व-संसेवया—सतोगुण ग्रहण करके; मुनिः—मुनि, साधु।

समस्त भौतिक संगति से मुक्त तथा मोह से मुक्त बुद्धिमान साधु को चाहिए कि अपनी इन्द्रियों का दमन करे और मेरी पूजा करे। उसे चाहिए कि सतोगुणी वस्तुओं में ही अपने को लगाकर रजो तथा तमोगुणों को जीत ले।

सत्त्वं चाभिजयेद्युक्तो नैरपेक्ष्येण शान्तधीः ।
सम्पद्यते गुणैर्मुक्तो जीवो जीवं विहाय माम् ॥ ३५॥

शब्दार्थ

सत्त्वम्—सतोगुण; च—भी; अभिजयेत्—जीते; युक्तः—भक्ति में लगा हुआ; नैरपेक्ष्येण—गुणों से अन्यमनस्क रहते हुए; शान्त—शान्त; धीः—बुद्धि वाला; सम्पद्यते—प्राप्त करता है; गुणैः—गुणों से; मुक्तः—मुक्त; जीवः—जीव; जीवम्—अपने बन्धन का कारण; विहाय—त्याग कर; माम्—मुझको।

तब भक्ति में स्थिर होकर साधु को चाहिए कि गुणों के प्रति अन्यमनस्क रह कर सतोगुण को जीत ले। इस तरह अपने मन में शान्त एवं प्रकृति के गुणों से मुक्त आत्मा, अपने बद्ध जीवन के कारण का ही परित्याग कर देता है और मुझे पा लेता है।

तात्पर्य : *नैरपेक्ष्येण* शब्द प्रकृति के गुणों से पूर्ण विरक्ति का द्योतक है। भगवान् की प्रेमाभक्ति में अनुरक्त होकर जो पूर्णतया आध्यात्मिक है, मनुष्य प्रकृति के गुणों में रुचि नहीं लेता।

जीवो जीवविनिर्मुक्तो गुणैश्चाशयसम्भवैः ।
मयैव ब्रह्मणा पूर्णो न बहिर्नान्तरश्चरेत् ॥ ३६॥

शब्दार्थ

जीवः—जीव; जीव-विनिर्मुक्तः—भौतिक जीवन की सूक्ष्म बद्धता से मुक्त हुआ; गुणैः—गुणों से; च—तथा; आशय-सम्भवैः—उसके मन में प्रकट हुए; मया—मेरे द्वारा; एव—निस्सन्देह; ब्रह्मणा—परब्रह्म द्वारा; पूर्णः—पूर्ण तथा सन्तुष्ट; न—नहीं; बहिः—बाहर (इन्द्रियतृप्ति); न—न तो; अन्तरः—भीतर (इन्द्रियतृप्ति की स्मृति); चरेत्—विचरण करे।

मन की सूक्ष्म बद्धता तथा भौतिक चेतना से उत्पन्न गुणों से मुक्त हुआ जीव मेरे दिव्य स्वरूप का अनुभव करने से पूर्णतया तुष्ट हो जाता है। वह न तो बहिरंगा शक्ति में भोग को ढूँढता है, न ही अपने मन में ऐसे भोग का चिन्तन या स्मरण करता है।

तात्पर्य : कृष्णभावनामृत में आध्यात्मिक मोक्ष प्राप्त करने के लिए मनुष्य जीवन एक दुर्लभ अवसर है। इस अध्याय में भगवान् कृष्ण ने प्रकृति के तीनों गुणों के लक्षणों का तथा कृष्णभावनामृत की दिव्य स्थिति का विस्तार से वर्णन किया है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने हमें आदेश दिया है कि कृष्ण-नाम की शरण लें जिससे हम प्रकृति के गुणों को पार करके, भगवान् कृष्ण की प्रेमाभक्ति का असली जीवन शुरू कर सकते हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कंध के अन्तर्गत ''प्रकृति के तीन गुण तथा उनसे परे'' नामक पच्चीसवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।